पाँचवाँ बोल है न ?

**जिणवयणमेव भासदि तं पालेदुं असक्कमाणो वि।**
**ववहारेण वि अलियं ण वददि जो सच्चवाई सो॥३९८॥**

जो मुनि.... मुनि के चारित्र के भेद हैं न ! यह चारित्र के भेद हैं, ये दस प्रकार। मुनि ! जिनसूत्र के ही वचन को कहते हैं, जिनसूत्र के ही वचन को कहते हैं। उसमें जो आचारादि कहा गया है, उसका पालन करने में असमर्थ हो तो भी अन्यथा नहीं कहते। आहाहा ! कि यह मैं भलीभाँति पालन नहीं कर सकता, मुझे दोष लगता है - इस प्रकार जिनवाणी जो कहती है, तदनुसार कहते हैं, अपनी स्वच्छन्दता से नहीं कहते। आहाहा ! पालन करने में असमर्थ हो तो भी झूठ नहीं कहते। आहाहा ! और जो व्यवहार से भी अलग नहीं कहते। आहाहा ! व्यवहार बोल है, उसमें भी असत्य नहीं कहते। बोलचाल-गृहस्थ के साथ बात चलती हो, व्यवहार में भी झूठ नहीं कहते, वे मुनि सत्यवादी हैं। दस प्रकार लिये हैं, उनमें

दस प्रकार से नामसत्य, द्रव्यसत्य, भावसत्य इत्यादि उसमें। अपनी बात तो यह है कि सत्यस्वरूप भगवान! जानने में आती है जो चीज, उससे जाननेवाले को जानना, वह सत्य है। आहाहा! क्या कहा?

जो चीज जानने में आती है, उसको जानते हैं और मानते हैं कि मैंने उसे जाना, परन्तु जाननेवाला अलग है, जाननेवाले को नहीं जाना। आहा! यह सत्य है — जाननेवाले को जानना, जाननेयोग्य को जानना - इसे छोड़कर... आहाहा!

**श्रोता :** जाननेवाले को जानना, यह तो शुद्ध उपयोग हुआ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जानने में जो चीज आती है — ज्ञेय, वह भी तो दूसरी चीज है परन्तु जाननेवाला कौन है? आहाहा! वह तो अन्तर्लक्ष्य करे तो जाननेवाले को जान सकते हैं। परलक्ष्य में तो जाननेयोग्य चीज जानने में आती है, वह तो पर है। आहाहा! समझ में आया? इस प्रकार वेदन में आनेयोग्य को वेदते हैं-जानते हैं। वेदन में आना... परन्तु वेदन करनेवाली जो चीज है... आहाहा! परम सत्य तो वह है। समझ में आया? भगवान परमसत्यार्थ जो भूतार्थ वस्तु है, उसको नहीं जाना और पर को जानने में रुक गया... आहाहा! और पर का वेदन होता है, भले ही राग का भी... पर के लक्ष्य से शरीर का ऐसा-ऐसा वेदन ऐसा दिखता है न राग, राग.... परन्तु वेदन करनेयोग्य को वेदन किया, जाना... आहाहा! परन्तु भगवान! वेदन करनेवाली चीज कौन है? आहाहा! उसको जानना, वह सत्यवस्तु है। आहाहा! समझ में आया? विशेष अधिकार है अन्दर दस बोल में। अब चलता अधिकार।

समयसार! आहाहा! परमसत्य प्रभु! यह दूसरे प्रकार से बात की है, वरना तो सत्यार्थ जो भूतार्थवस्तु है... आहाहा! उसको जानना, वह सत्य है। आहाहा! बाकी पर को जानने में रुकता है तो पर को जाना परन्तु जाननेवाला कौन है? — उसको नहीं जाना वह असत्य है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ १९ गाथा — जैसे घड़ा और वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श अभेद है और घड़े में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है और वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श घट है। घट समझे न, घट। वैसे - **इसी प्रकार कर्म-मोह आदि अन्तरंग परिणाम....** आहाहा! शुभाशुभराग **तथा नोकर्म-शरीरादि बाह्य वस्तुएँ-( जो कि ) सब पुद्गल के परिणाम हैं....** वास्तव में तो पुण्य

और पाप का भाव, वह पुद्गल का परिणाम है। निमित्त के आश्रय से हुआ तो निमित्त का है — ऐसा कहते हैं। अपना भगवान आत्मा... आहाहा! शुद्ध चैतन्य भगवान के अवलम्बन से नहीं हुआ, वह निमित्त के आश्रय और अवलम्बन से हुआ तो निमित्त पुद्गल है, उसके आश्रय से हुआ अपने में, परन्तु फिर भी अपने में हुआ, वह स्वभाव नहीं; इस कारण पुण्य और दया, दान, व्रत, भक्ति का भाव... आहाहा! इन्द्रियाँ जो यह जड़ और भावेन्द्रिय, उससे जो जानने में आया शास्त्र आदि ज्ञान, आहाहा! गजब बात प्रभु! उसको भी यहाँ पुद्गल-परिणाम कहा! जानने का भाव पर का, परतरफ से जाना-शास्त्र ज्ञानादि, पुद्गल का परिणाम है, क्योंकि उससे अबन्धपरिणाम नहीं हुआ; वह बन्धपरिणाम है। अतः अबन्धस्वरूपी भगवान... आहाहा! उससे भिन्न बन्धभाव, वह पुद्गल का भाव है। आहाहा! गजब बात है।

श्रीमद् में.... रात्रि में कहा था न! 'दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है।' आहाहा! सन्तों की, दिगम्बर सन्तों की वाणी, जिसे ऐसा कहे कि शास्त्रज्ञान भी हुआ... आहाहा! प्रभु! दया, शास्त्र की ओर का विकल्प हुआ, दया, दान, व्रत आदि का (विकल्प हुआ), उसे तो पुद्गल कहा, परन्तु शास्त्रज्ञान का... आहाहा! प्रभु-प्रभु! जिस ज्ञान में अबन्धपना नहीं, वह ज्ञान पुद्गल है। आहाहा!

वह परद्रव्य है, आहाहा! यहाँ तो स्त्री, पुत्र, परिवार सब परद्रव्य है, ऐसा पुण्य और पाप का भाव परद्रव्य है, ऐसा पर का जानना भी भाव-परद्रव्य है। अरेरे! प्रभु! ऐसी बात है! क्या हो? अरेरे! सन्तों ने तो प्रसिद्ध करके जगत को निहाल कर दिया है। आहाहा! भाई! तू पर को जानने... भगवान को जानने गया, समवसरण में साक्षात् तीर्थंकर को, तो भी जो पर को जानना हुआ... आहाहा! कहते हैं कि वह तो पुद्गल का (परिणाम) पुद्गल है। उसमें भगवान आत्मा का परिणाम आनन्द नहीं आया। आहाहा! प्रभु! तू कौन है? आहाहा! अपने को जानने में तो आनन्द आता है। वह आनन्द नहीं आता है और यह पर का जानना हुआ.... आहाहा! गजब बात है न प्रभु! सन्तों की वाणी तो वाणी, रामबाण है! है! आहाहा! अमोघ-अमोघ सफल, मोघ अर्थात् निष्फल, अमोघ अर्थात् सफल। यह मोघ था न मोघ, मोघ का अर्थ निष्फल होता है; अमोघ (का अर्थ) सफल होता है। आहाहा!

यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति, शास्त्र की भक्ति, गुरु की भक्ति, देव की भक्ति... आहाहा! वह पुद्गल का परिणाम है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि अपना ज्ञायकस्वरूप भगवान का परिणाम तो निर्मल और पवित्र होना चाहिए। आहाहा! यह मलिन और अपवित्र परिणाम... आहाहा! यह कहा, अन्तरंग शरीर आदि, रागादि, मोहादि; बहिरंग आत्म तिरस्कारी, आहाहा! भगवान अनाकुल आनन्द प्रभु, चैतन्य का पर्वत भगवान, आहाहा! उसका यह दया, दान, भक्ति आदि का परिणाम, स्वभाव का तिरस्कार करनेवाला है। आहाहा! उसके प्रेम में स्वभाव का तिरस्कार / अनादर होता है। आहाहा! ऐसी बात कहीं सुनने को नहीं मिलती। आहाहा! है ? **तिरस्कारी...** ( भाव) आहाहा! भगवान ज्ञान और आनन्द का गंज प्रभु, उससे विरुद्ध परिणाम, वे आत्मा के नहीं; पुद्गल के कहे हैं। आहाहा! क्योंकि वे परिणाम हैं, वह अपनी चीज नहीं। आहा! अपनी चीज हो, वह अलग नहीं पड़ती, दूर हो नहीं। आहाहा!

यह पुण्य के परिणाम दया, दान, व्रत, भक्ति, शास्त्र की भक्ति... आहा! गजब बात है प्रभु! यह स्वरूप का तिरस्कार करनेवाले हैं। आहाहा! वहाँ आगे अकेली दृष्टि दे, जिसने राग को भिन्न जाना, वह राग में है नहीं। समझ में आया ? आत्मा को राग से भिन्न जाना तो वह तो ज्ञायकस्वरूप है, वह ज्ञानी तो ज्ञायकस्वरूप में है; राग आता है परन्तु उसको जानता है; मेरी चीज है और उससे मुझे लाभ होगा ( — ऐसा नहीं मानता)। आहाहा! तीन लोक के नाथ ऐसा कहते हैं - प्रभु! तुझे हमारी भक्ति का भाव-राग है। आहाहा! प्रभु! तू निरागी, आनन्दकन्द है न ? आहाहा! तेरी चीज कहाँ है ? तूने नहीं जाना, नाथ! आहाहा! पर के वेदन में वेदन वह तो जाना परन्तु वेदन करनेवाली पर्याय में यह जो भगवान त्रिकाली है, उससे ये रागादि भिन्न हैं। आहाहा! तो उस भिन्न को यहाँ पुद्गल का परिणाम कहा है। आहाहा! बापू! यह तो धीरजवान का मार्ग है। आहाहा!

**इस प्रकार वस्तु के अभेद से जब तक अनुभूति है,....** लो, है न ? आहाहा! यह परिणाम... दो बार तिरस्कार (शब्द) आया है। है ? तिरस्कारी, वह भी आत्मा का.... **( आत्मा के तिरस्कार करनेवाले ) पुद्गल-परिणाम हैं' इस प्रकार वस्तु के अभेद से....** यह क्या कहा ? यह शुभराग आदि-दया, भक्ति का ( भाव) आया, वह पुद्गल तो है और जब तक आत्मा को उससे अभेद माना। आहाहा! — राग से आत्मा (की) अभेद

**जब तक अनुभूति है,...** आहाहा! भगवान आत्मा के साथ राग की अभेदबुद्धि से अनुभव है। आहाहा! समझ में आया? जीव अधिकार है न? आहाहा! तो वे रागादि अजीव हैं, पुद्गल हैं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का राग है, वह भी शुभराग-पुद्गल है, उसके साथ जब तक अभेद अनुभूति है, आहाहा! **इस प्रकार वस्तु के अभेद से जब तक अनुभूति है,....** ज्ञान, **तब तक आत्मा अप्रतिबुद्ध है....** तब तक आत्मा अज्ञानी है, प्रतिबुद्ध नहीं। आहाहा! भाषा निकलती है, वह तो जड़ है; कण्ठ कंपता है, वह जड़ है, आहाहा! तो जिसको अन्दर में ऐसा लगता है कि मैं भलीभाँति बोलता हूँ, वह तो वाणी और आत्मा से अभेदबुद्धि हुई। आहाहा! वह तो वाणी... परन्तु उसमें विकल्प आया, उस विकल्प के साथ जब तक अभेदबुद्धि है... आहाहा! तब तक अप्रतिबुद्ध है, अज्ञानी है, बहिरात्मा है। आहाहा!

जैसे **और जब कभी,...** अब सम्यक् बताते हैं। **जैसे रूपी दर्पण की....** रूपी दर्पण-काँच की **स्वच्छता ही...** स्वच्छता ही, दर्पण की स्वच्छता ही **स्व-पर के आकार का प्रतिभास करनेवाली है....** यह दर्पण स्व का आकारस्वरूप और पर का प्रतिभास करनेवाला है। आहाहा! **और उष्णता तथा ज्वाला अग्नि की है,....** आहाहा! उसमें जो अग्नि दिखती है और उष्णता है, वह तो अग्नि की है, दर्पण की नहीं। आहाहा! यहाँ तो अग्नि तो अग्नि में रही परन्तु दर्पण में अग्नि जैसी पर्याय है न? है तो स्वच्छता की - दर्पण की पर्याय, परन्तु वह वास्तविक उसकी नहीं है। समझ में आया? वह तो अग्नि की है — ऐसा कहते हैं। अन्दर दर्पण में जो ज्वाला दिखती है, वह अग्नि की है। भगवान आत्मा ज्ञायकदर्पण, भगवान में जो राग दिखता है, वह तो अपने निर्मलज्ञान की प्रधानता से राग यह है — ऐसा दिखता है। मैं हूँ — ऐसा नहीं, आहाहा! अरे! कहाँ जाना?

यह दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, अपवास आदि का विकल्प उत्पन्न हुआ... आहाहा! वह; और मैं स्व और पर का जाननेवाला हूँ, उस स्व और पर — रागादिक की अभेदबुद्धि अज्ञान है परन्तु स्व और रागादि पुद्गल का परिणाम पर, उसको अपने में रहकर स्व-पर प्रकाशक जाननेवाला हूँ। आहाहा! **अपने को और पर को जाननेवाली ज्ञातृता ही है...** अपनी तो अपने को और राग को जाननेवाली ज्ञातृता, वह अपनी है;

रागादि अपने नहीं हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी पुत्र और स्त्री और मेरे... मेरे और यह मेरा... मर गया, मार डाला तुझे, आहाहा! ठिकाने लगाना चाहिए न, कहा था न फूलचन्दजी ने क्या? लड़के-बड़के को ठिकाने लगाना चाहिए न? भटकने में! स्वयं ठिकाने पड़े, उसमें भटकने में।

**श्रोता :** ठिकाने लगते जायें तो यहाँ आया जा सकता है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** धूल में भी नहीं लगते, किसे कहना ठिकाने? ठिकाने तो स्थान आनन्दधाम में पड़े, उसे ठिकाने कहलाता है। आहाहा! यह तो लड़कों को अच्छे ठिकाने विवाह और दो-पाँच-पचास हजार लेकर कोई कन्या आयी और ओहोहोहोहो! उसके पास एक हजार तोला सोना दिया है, उसके पिता ने। ओहोहो! यह क्या सोने का पता नहीं अपने को कुछ? अकेले प्रसन्न प्रसन्न हो जाते हैं। आहाहा! एक लाख तोला सोना, एक लाख तोला सोना दिया, साड़ियाँ, पाँच-पाँच हजार की एक साड़ी, ऐसे दस तो साड़ियाँ, साड़ियाँ क्या? साड़ी, भभूतभाई! यह भभूती अज्ञान की।

**श्रोता :** वैभव-वैभव।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! प्रभु तू कहाँ गया? भाई!

**श्रोता :** खो गया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** खो गया भाई तू। आहाहा!

जाननेवाले की स्वच्छता वह तेरी है, स्व और पर को जाननेवाली ज्ञातृता, वह तेरी है। आहाहा! शरीर, कुटुम्ब परिवार तो तेरा नहीं। देश-मेरा देश, मेरा देश... हमची मुम्बई, क्या कहते हैं न कुछ? मुम्बई हमची? हमची मुम्बई धूल भी नहीं। सुन न भाई! मर गया, मार डाला! यह सब काठियावाड़ी आये हैं न? निकल जाये यहाँ से। हमची मुम्बई है दक्षिण की। आहाहा! मार डाला... आहाहा! अफ्रीका में भी रंगभेद है न? बाहरवाले आये और पैसेवाले हो गये और हम यहाँ कितने गरीब हैं... तुम आकर यहाँ बड़े करोड़पति हो गये। महाजन लोग वहाँ अफ्रीका में बहुत करोड़पति हैं। आहाहा! यहाँ बैल की पूँछ खेती में ऐसे करते हों, वहाँ पैसेवाले हो गये, करोड़पति और वे गाँव के लोग बेचारे कितने ही

साधारण हो गये.... बाहर निकलो, नहीं तो यहीं के यहीं रहोगे, उसके लिए यह है, तुम्हारे से पैसा बाहर दिया नहीं जा सकेगा, बाहर लिया नहीं जा सकेगा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि स्वदेश भगवान आत्मा, उसे परदेश में—रागादिक (में) जाना... आहाहा! वह तो परदेश है, स्वधाम नहीं। आहाहा! भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का आनन्दधाम अमृत का सागर (है), उसमें उसकी स्वच्छता वह उसकी है। राग सम्बन्धी अपनी ज्ञान की पर्याय और अपनी पर्याय, वह स्वच्छता उसकी है। राग और पर उसका है नहीं। आहाहा! अरेरे! अभी ऐसी दृष्टि का ठिकाना नहीं। आहाहा! **इसी प्रकार अरूपी आत्मा की तो....** वह रूपी दर्पण... **अपने को और पर को जाननेवाली ज्ञातृता....** बस, आहाहा! यह तो अपनी स्वच्छता में राग जानने में आता है, परन्तु राग अपना है — ऐसा अन्दर में होता ही नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग लोगों को बहुत कठिन पड़ता है, इसलिए बेचारे दूसरे रास्ते-इस व्यवहार से होगा, इससे होगा (ऐसा मानते हैं)। यहाँ यह कहते हैं कि तेरा व्यवहार दुःखरूप है, वह तेरी चीज ही नहीं है, वह तो पुद्गल है। गजब बात है नाथ, आहाहा! और इस पुद्गल से तेरा सम्यग्दर्शन, तेरे आत्मा का ज्ञान हुआ? क्या हो! जगत... है?

**श्रोता :** ज्ञाता-दृष्टा रहना....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आहाहा! यहाँ तो स्व और पर, **अपने को और पर को जाननेवाली ज्ञातृता ही है...** वह अपनी है। आहाहा! रागादि और शरीर और स्त्री-कुटुम्ब-परिवार तो कहीं रह गये। आहाहा! अपनी पर्याय में राग हो, वह भी पर है; अपनी स्वच्छता में जाननेयोग्य है तो स्त्री, कुटुम्ब और परिवार कहाँ-कहाँ व्यर्थ रह गये बाहर, आहाहा!

यह सब पुद्गल हैं, कहा है। यह पुद्गल है, पर है न? यह चैतन्य नहीं, इसलिए पुद्गल। आहाहा! स्त्री-पुत्र का आत्मा पुद्गल! यह द्रव्य नहीं, इसलिए अद्रव्य। यह आत्मा नहीं, इसलिए अनात्मा; यह आत्मा नहीं, इसलिए पुद्गल। आहाहा! ऐसी बात कहाँ? अरेरे! सत्य का सुनना मिलता नहीं, सुनने में आवे नहीं, वह कब करे? आहाहा! एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है... ऐसा कहकर तिरस्कार... तिरस्कार (करता है) परन्तु एकान्त ही है, सम्यक् एकान्त (है)। निश्चय का विषय सम्यक् एकान्त है। नय है

न ? प्रमाण में दो का विषय है। यह निश्चयनय का विषय एकान्त (है)। सम्यक् चैतन्यमूर्ति स्व और पर को जानने की परिणति / पर्याय उसकी, बस। वह है त्रिकाली परन्तु वर्तमान में स्व को जानने की पर्याय और राग को जानने की पर्याय, वह पर्याय अपनी, बस इतनी गिनी। समझ में आया ?

आहाहा! और यह स्व-स्वामी सम्बन्ध वह द्रव्य-गुण और निर्मल पर्याय, वह स्व और उसका स्वामी जीव, बस! राग का स्वामी और पत्नी का पति स्वामी और नर का नरेन्द्र / स्वामी और नरपति-नृपति मनुष्य का पति.... धूल भी नहीं। यह उद्योगपति... मार डाला!

**श्रोता :** बोर्डिंग का गृहपति...

**पूज्य गुरुदेवश्री :** पहले पैसे नहीं थे, इसके पिता ने कुछ नहीं दिया था, यह अभी अपने बल से दस करोड़ रुपये, पच्चीस करोड़ रुपये इकट्ठे किये हैं। ओहोहो! क्या है परन्तु यह तुझे ? आहाहा! सन्निपात लगा है। आहाहा! यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं, जैसे पुण्य और पाप को पुद्गल कहा; वैसे शरीर, वाणी, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार सबको पुद्गल कहा। यह आत्मा नहीं, इसलिए पुद्गल — ऐसा। समझ में आया ? आहाहा! यह कहाँ भ्रमित हो गया है ? आहाहा! भ्रमित हो गया है पर में, भ्रमित हो गया (और) भगवान को भूल गया तू। प्रभु! आहाहा!

तेरी तो जानने-अपने को और पर को जाननेवाली... आत्मा की तो ऐसा। आत्मा की तो ऐसा है न ? **अपने को और पर को जाननेवाली...** अब यहाँ वर्तमान पर्याय की बात करते हैं। आत्मा तो त्रिकाली द्रव्य है। समझ में आया ? है ? **अरूपी आत्मा की तो....** यहाँ पर्याय लेना है न ? द्रव्य-गुण तो कहा। यह कहते हैं **अपने को और पर को जाननेवाली ज्ञातृता....** आहाहा! यह पर्याय ली है। अपने को जो पर्याय जानती है और वह पर्याय राग को जानती है, वह ज्ञातृत्वपर्याय, आत्मा की है। समझ में आया ? भाषा तो सादी परन्तु भाई भाव तो कठिन है भाई! आहा! भाषा आ जाये, इसलिए अन्दर आया — ऐसा भी नहीं, यह तो अलग दूसरी चीज है। आहाहा!

शरीर को पुद्गल कहा, बहिरंग सब स्त्री, पुत्र आदि सबको पुद्गल कहा। लो! आहाहा! आदि है न ? शरीरादि शब्द है न ? आहाहा! अरे! देव-गुरु और शास्त्र, वह

पुद्गल है — ऐसा कहते हैं। ३१ (गाथा) में कहा है कि देव, गुरु और शास्त्र, इन्द्रिय है; वे अनीन्द्रिय आत्मा नहीं है। आहाहा! लोग कहाँ-कहाँ बहकर एकान्त में चले जाते हैं, उनको पता नहीं, आहाहा! 'सहजानन्दी रे आत्मा; सूतो कईं निश्चिंत!' प्रभु तू कहाँ सोया? तेरा पोढना कहाँ गया भाई! राग और पुण्य में तेरा पोढन-सोना हो गया! प्रभु! तू तो आनन्द का सागर है न! तेरी पर्याय में जो जानने की दशा हुई, वह तेरी है। आहाहा! आहाहा! **और कर्म तथा नोकर्म पुद्गल के हैं।....** पुण्य और पाप का भाव, शरीर आदि बाह्य वस्तु, वह सब पुद्गल के हैं। आहाहा!

**इस प्रकार स्वतः अथवा परोपदेश से....** दो प्रकार, बस! या तो अपने से जान ले और या गुरु उपदेश से जान ले। समझ में आया? आहाहा! जानना तो इसको (स्वयं को) है। आहाहा! ऐसा काम कठिन पड़ता है; संसार के काम करना, स्त्री-पुत्र संभालना, इज्जत हो तद्नुसार रहना... अब यह कहें ऐसा आत्मा, ऐसा आत्मा... आहाहा! भाई! तूने व्यर्थ की मजदूरी बहुत की है प्रभु! आहाहा! राग, राग शुभ-अशुभभाव.... यह तो अशुभभाव है। यहाँ तो शुभभाव को भी, आहाहा! पुद्गल कहा है।

**श्रोता :** आत्मा का तिरस्कार करनेवाले ये भाव हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे वह भाव, पुद्गल! आहाहा! अपने को जानना और शुभभाव को जानना, यह ज्ञातृत्वपर्याय अपनी और ये रागादि पुद्गल के। आहाहा! चैतन्य के नहीं, इसलिए पुद्गल ऐसा। आहाहा! अभी ऐसा समझना कठिन पड़ता है। है! क्या हो भाई! यह तो जन्म-मरण मिटाने की कला है।

**श्रोता :** कालेज....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कालेज है बापू! क्या कहें? अमुक प्रकार का जानपना तो हो... यह तो भगवान का कालेज है। आहाहा! सीमन्धर भगवान विराजते हैं। आहाहा! उनकी यह वाणी यहाँ आयी है। आहा!

इस प्रकार आत्मा अपने को जाने वह ज्ञानपर्याय और राग को जाने, वह पर्याय अपनी है। ऐसे कैसे जाने? कि या तो स्व से-अपने से जान ले... आहाहा! या पर-उपदेश - गुरु का (उपदेश) मिले और जाने परन्तु जानना तो इसको है। आहाहा! एक **स्वतः**

**अथवा परोपदेश से जिसका मूल....** आहाहा! जिसका मूल... पहले अभेद कहा था न? तो अब जिसका मूल **भेदविज्ञान है....** आहाहा! जैसे घड़ा और वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श दोनों अभेद हैं। घड़े में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है और वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श में घड़ा है, अभेद है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में रागादि हैं, वे अभेद हैं, यह मिथ्याबुद्धि है।

अब भेद.... आहाहा! अरे भाई! करने योग्य तो यह है, बाकी तो पाप के पोटले बाँधकर, भाई! कहाँ जायेगा, भाई! कुछ नहीं मिले कहीं, चौरासी के अवतार, ओहोहो! शरण तो एक भगवान अन्दर है। आहाहा! वह अपने से जाने। मैं स्वतः ज्ञाता-दृष्टा हूँ या गुरुगम से जाने कि गुरु कहते हैं कि तेरी चीज यह है। आहाहा! **जिसका मूल भेदविज्ञान है...** आहाहा! जानने में आया क्या? कि जिसका मूल भेदविज्ञान-राग से भिन्न स्वभाव से अभिन्न अपनी जाननशक्ति स्व-पर प्रकाशक, उससे अभिन्न; राग से — दया, दान, व्रतादि से भिन्न, आहाहा! ऐसा स्पष्ट और इतना फिर भी अरे बेचारे क्या करते हैं! भाई!

अरे! भगवान का विरह पड़ा, परमात्मा वहाँ रह गये। आहाहा! केवलज्ञान की शक्ति रही नहीं, देवों का आवागमन घट गया। आहाहा! समझ में आया? उसमें ऐसी बातें, बाहर रखना बहुत कठिन, कहते हैं। आहाहा!

**श्रोता :** देव अभी क्यों नहीं आते? देव....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह कहा न? देवों का आवागमन घट गया। घट गया, कहीं किसी प्रदेश में सहज आते होंगे, लौकिक के लिये परन्तु धर्म के लिये तो देवों का (आवागमन नहीं है)। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य को भगवान का विरह लगा, आहाहा! तब उन्हें जाने का भाव हुआ, सहज ही देव आया। समझ में आया? और स्वयं की लब्धि भी थी, दोनों बातें आती हैं। चलो, भगवान के पास, विमान में। आहाहा! देखो न! देव ले गये, भगवान के पास! लब्धि भी थी चार अंगुल ऊँचे (चलने की लब्धि थी)। आहाहा! अभी तो वे देव भी नहीं रहे। आहाहा! है? देव स्वयं रहा एक! आहाहा! देवशक्ति का नाथ भगवान, इस देव की मौजूदगी है। समझ में आया? आहाहा! यह अपने को किसी व्यक्ति के प्रति काम नहीं है, यह तो तत्त्व की स्थिति ऐसी है भाई! जिनवाणी में वस्तु की स्थिति ऐसी कही है। आहाहा!

वहाँ तो ऐसा लिया है 'राजा भिक्षार्थे भ्रमे ऐसी जन को टेव।' प्रतिमाजी के पास जाये, उनके पास जाये, शास्त्र के पास (कि) मुझे कुछ दो। अरे! भिखारी! क्या माँगता है? तेरे पास क्या नहीं है, तो हम तुम्हें देंगे? शास्त्र को कहे परन्तु हे शास्त्र...! कुछ तुम प्रसन्न होओ। भगवान की मूर्ति के समीप जहाँ भगवान जहाँ बैठे... भगवान हो ऊपर... परन्तु भगवान तेरे पास हैं न? आहाहा! तू भिक्षा के लिए कहाँ निकला भिखारी! आहाहा! एक तो बाह्य लक्ष्मी का भिखारी, आहाहा! और अन्दर की चीज पाने के लिये बाहर में गोते खाता है। यहाँ यात्रा करें, यहाँ शत्रुंजय... ऊपर क्या कहलाता है वह? वह ऊपर क्या कहलाता है? वह बैठने की (डोली)। डोली-डोली डोली में बैठकर जाये, हिल न सके वृद्ध हो वह (डोली में बैठकर जाये) जय भगवान, शिवपद हमको देना रे महाराज! वे कहते हैं कि शिवपद तो तेरे पास ही है, भिखारी! हमारे पास माँगने क्या आया? आहाहा!

ज्ञानी को भी शुभभाव आता है परन्तु वे जानते हैं कि मेरी कमजोरी से आया है तो उसे भी हेयरूप से जानते हैं। आहाहा! **इस प्रकार स्वतः अथवा परोपदेश से जिसका मूल....** आहाहा! पर ने भी यह कहा था कि राग से भिन्न कर और अपने से भी किया राग से भिन्न। आहाहा! देखो, यह आचरण और यह क्रिया! आहाहा!

**जिसका मूल भेदविज्ञान है....** आहाहा! यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से भी स्वतः को भेद करके जाना। आहाहा! उसे गुरु ने भी यह कहा कि तेरा राग से भिन्न तेरी भिन्न चीज पड़ी है, प्रभु! तू तो वीतरागी बिम्ब है, तू परमात्मा ही है, आहाहा! इस राग से भिन्न **जिसका मूल भेदविज्ञान है — ऐसी अनुभूति....** ऐसा अनुभव। राग से भिन्न — ऐसा आत्मा का अनुभव। आहाहा! उत्पन्न होगी... **ऐसी अनुभूति उत्पन्न होगी....** देखो! **तब ही (आत्मा) प्रतिबुद्ध होगा।** आहाहा! समझ में आया? तब यह सम्यग्दृष्टि होगा। आहाहा! ज्ञानप्रधान कथन है न तो अनुभूति... आहाहा! यहाँ तो वहाँ तक कहा — राग से भिन्न और शास्त्रज्ञान हुआ, उससे भी भिन्न... आहाहा! ऐसी अनुभूति हो, तब वह प्रतिबुद्ध हुआ। तब उसे सम्यग्ज्ञान हुआ। आहाहा! यहाँ तो अप्रतिबुद्ध था, वह प्रतिबुद्ध हुआ — ऐसा कहते हैं। अज्ञानी (था, वह) ज्ञानी हुआ। अज्ञान टालकर (ज्ञानी हुआ), उसकी तो यहाँ बात चलती है। आहाहा! समयसार में ऐसा कि मुनि की व्याख्या है... अरे!

सुन तो सही ! यह तो मुख्यरूप से कथन है, गौणरूप से प्रतिबुद्ध होने की अप्रतिबुद्ध को ही शिक्षा है। आहाहा !

**भावार्थ : जैसे स्पर्शादि में पुद्गल का और पुद्गल में स्पर्शादि का अनुभव होता है....** पुद्गल में स्पर्श, रस, गन्ध आदि और स्पर्श, गन्ध में पुद्गल — ऐसा अनुभव - ज्ञान होता है, दोनों एकरूप अनुभव में आते हैं। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, और घट दोनों एकरूप देखने में आते हैं। **उसी प्रकार जब तक आत्मा को, कर्म....** रागादिक **नोकर्म...** शरीर आदि, कुटुम्ब, परिवार, देश आदि, देव, गुरु और धर्म परवस्तु, वह आत्मा की **और आत्मा में कर्म-नोकर्म की भ्रान्ति होती है....** आहाहा ! देव-भगवान मेरे हैं.... आहाहा ! **दोनों एकरूप भासित होते हैं,....** उसी प्रकार जब आत्मा को कर्म में आत्मा की, आत्मा में भ्रान्ति होती है, राग में और शरीर आदि देश में और पर में... आहाहा ! **दोनों एकरूप भासित होते हैं,....** राग, शरीर और आत्मा; यहाँ राग, शरीर एक में गिने हैं और आत्मा दो एकरूप भासित होते हैं। आहाहा ! **तब तक तो वह अप्रतिबुद्ध है....** आहाहा !

चाहे तो शास्त्र पढ़े हों, ग्यारह अंग और नौ पूर्व ( पढ़े हों) आहाहा ! इससे भी मेरी चीज भिन्न है। भेद... परसत्तावलम्बी ज्ञान कहा है न परमार्थ वचनिका में ? परसत्तावलम्बी ज्ञान ! उसे ज्ञानी कभी मोक्षमार्ग नहीं कहता। आहाहा ! आहाहा ! परसत्तावलम्बी अर्थात् ? पर की अपेक्षा होकर जो ज्ञान हुआ, वह पर की सत्तावलम्बी-उसे धर्मी, मोक्षमार्ग नहीं कहता। आहाहा ! अपनी स्वसत्ता के अवलम्बन से जो ज्ञान-दर्शन हुआ, उसे मोक्षमार्ग कहता है। आहाहा ! ऐसी बातें कठिन पड़ती हैं, फिर लोग बेचारे सब विरोध करते हैं, क्या करे ? कोटा में जुगलकिशोर के सामने वहाँ विरोध आया या नहीं ? अब ऐसी बातें ! यह मार्ग, भाई ! आहाहा ! अरे ! लक्ष्मी तिलक करने आयी तो कहता है नहीं, नहीं मुँह धोना है, परन्तु चली जायेगी, बाद में अवसर आया तो कहता है नहीं, नहीं, नहीं एकान्त है, भाई, बापू !

**श्रोता :** लक्ष्मी के रूप में आपका ही उदय हुआ है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हैं... ?

**श्रोता :** लक्ष्मी के रूप में आपका उदय है। लक्ष्मी के रूप में, लक्ष्मी सबको तिलक करने आयी है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो यह चीज है, भगवान! क्या कहें? आहाहा! दोनों एकरूप भासित हो, तब तक तो वह अप्रतिबुद्ध है। आहाहा!

**और जब वह यह जानता है कि आत्मा तो ज्ञाता है....** आहाहा! वह तो ज्ञानस्वभावी-सर्वज्ञस्वभावी ज्ञाता है, वह सर्व को जाने परन्तु सर्व से अपने में जानना हो — ऐसा होता नहीं। अपने सिवाय परचीज से अपने जानना होता है — ऐसा नहीं। मैं तो स्व-पर का जाननेवाला हूँ। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

दशलक्षणी पर्व धर्म, बापू! यह कोई अलौकिक धर्म है — चारित्र आराधना का धर्म है। आहाहा! दशलक्षणी का अर्थ यह है कि चारित्र आराधना का धर्म। आहाहा! सम्यग्दर्शनपूर्वक चारित्र की आराधना कर। आहाहा! श्वेताम्बर में आठ (दिन) गिने, उन्होंने एक पंचमी गिनी और पहले सात दिन... जैसे लौकिक में विवाह करते हैं न विवाह... विवाह की तिथि हो, उससे पहले चार-पाँच दिन इस ओर मण्डप लगाते हैं, लौकिक... वैसे पंचमी रखकर सात दिन इस ओर रखे... सब लौकिक लाईन। यह तो दस प्रकार पूरे पूर्ण... आहाहा! दिगम्बर की रीति ही कोई व्यवहार की भी कोई अलौकिक है। समझ में आया? आहाहा! और वह भी दसों ही प्रकार का धर्म आनन्ददायक है, वह आनन्ददायक प्रभु, कल्पना का विषय नहीं है। आहाहा! किसी जगह ऐसा लिखा है — दस प्रकार के धर्म में विकल्प उठता है न, इस हिसाब से शुभभाव भी गिना है, परन्तु वह यहाँ नहीं लेना। समझ में आया?

भगवान आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक चारित्र की आराधना और आनन्द-सुखरूप की उत्पत्ति... आहाहा! उसका नाम दशलक्षण पर्व है। आहाहा! समझ में आया?

**तभी वह प्रतिबुद्ध होता है।....** जैसे आत्मा तो ज्ञाता है और कर्म-नोकर्म पुद्गल ही है, मेरे नहीं। रागादिक जड़ के हैं। आहाहा! **तभी वह प्रतिबुद्ध होता है।....** ज्ञानी होता है। **जैसे दर्पण में अग्नि की ज्वाला दिखाई देती है, वहाँ यह ज्ञात होता है कि 'ज्वाला तो अग्नि में ही है, वह दर्पण में प्रविष्ट नहीं है,....** ज्वाला दर्पण में अन्दर प्रविष्ट नहीं है। ऐसे दर्पण में दिखाई दे रही है, (वह) **वह दर्पण की स्वच्छता ही है;....** वह तो दर्पण की स्वच्छता है। **इसी प्रकार 'कर्म-नोकर्म अपने आत्मा में प्रविष्ट नहीं हैं;....** राग

और पुण्य और दया-दान का विकल्प, भगवान आत्मा में प्रविष्ट नहीं है। आहाहा!

अरे! चारों अनुयोग में हम कहते हैं, यहाँ तो अकेला द्रव्यानुयोग है,... अरे प्रभु! सुन तो सही! चारों अनुयोगों में, वस्तु तो यह द्रव्यानुयोग में कही, वह वस्तु है। आहाहा! कोई विरुद्ध दूसरे मुनियों ने कहा वह विरुद्ध है? वह तो व्यवहारनय से कथन करके बताया है कि इस गुणस्थान में ऐसा व्रत होता है, ऐसा यहाँ बताया है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्यदेव को दूसरे मुनियों का विरोध है? ( श्रोता : जरा भी नहीं)

आहाहा! **'ज्वाला तो अग्नि में ही है, वह दर्पण में प्रविष्ट नहीं है, और जो दर्पण में दिखाई दे रही है,....'** नोकर्म भगवान आत्मा में प्रविष्ट नहीं हैं। **आत्मा की ज्ञान-स्वच्छता ऐसी ही है कि जिसमें ज्ञेय का प्रतिबिम्ब दिखाई दे;....** जानने की चीज जो जानते हैं, उसका प्रतिबिम्ब ज्ञान में आता है, वह चीज नहीं आती। आहाहा! लोगों को ऐसा कठिन पड़ता है, इसलिए वे फिर ऐसा कहते हैं, उन सोनगढ़वालों का यह धर्म है। अरे भगवान! यह तो वीतराग परमात्मा का फरमान है, उसका तो यह स्पष्टीकरण / अर्थ चलता है। आहाहा!

**इसी प्रकार कर्म-नोकर्म ज्ञेय हैं....** राग, वह ज्ञान का परज्ञेय है, स्वज्ञेय नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का विकल्प उत्पन्न होता है, वह ज्ञेय है, परज्ञेय है। है? **इसलिए वे प्रतिभासित होते हैं'....** ज्ञान का स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है तो प्रतिभासित हो। **ऐसा भेदज्ञानरूप अनुभव आत्मा को या तो स्वयमेव हो अथवा उपदेश से हो, तभी वह प्रतिबुद्ध होता है।** तब उसको सम्यग्ज्ञान होता है, तब मोक्ष का मार्ग शुरु होता है। ( विशेष कहेंगे)

( **श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)